नियमसार, कलश-१५८। आलोचना है। आलोचना का अधिकार है। आलोचना अर्थात्? जो शुद्ध त्रिकाली द्रव्यस्वभाव है, उसे देखना, उसे आलोचना, उसमें एकाग्र होना, उसे यहाँ आलोचना कहते हैं। निश्चय आलोचना है। निश्चय देखना। स्वरूप जो त्रिकाली अनन्त गुण का समुदाय ऐसा जो प्रभु, उसे देखना, उसे आलोचना अर्थात् उसे देखना और उसमें एकाग्र होना, वह आलोचना है।

[श्लोकार्थः] सर्व संग से निर्मुक्त,... जो आलोचना करनेयोग्य जीव है, वह जीव कैसा है? कि सर्व संग से निर्मुक्त। जिसे कुछ संग ही नहीं। विकल्प का संग नहीं। आहा! **निर्मोहरूप,...** है। सर्व संग से निर्मुक्त है और निर्मोह (अर्थात्) पर में सावधानी का

बिल्कुल अभाव है। मोह अर्थात् राग। पर मे सावधानी से बिल्कुल रहित है, ऐसा जिसका त्रिकाली शुद्ध सकल निरावरण अखण्ड एक स्वरूप ऐसा जो **अनघ...** दोषरहित। अघ अर्थात् पुण्य और पाप, ऐसा जो अघ, उससे रहित **और परभाव से मुक्त...** भाषा एक की एक है। अनघ अर्थात् निर्दोष है और परभाव से मुक्त है। वस्तु जो है, वह तो त्रिकाल निरावरण है। दृष्टि का विषय है, वह त्रिकाल निरावरण निर्मोह है। परसन्मुख के पर्याय के झुकाववाला भी उसका स्वरूप नहीं है। अपना पूर्ण जो अन्तरस्वरूप, पर्याय के पीछे अन्तर रहा हुआ तत्त्व, पर्याय के अन्तर रहा हुआ तत्त्व, वह अत्यन्त निर्मुक्त और परभाव से भिन्न है।

ऐसे इस परमात्मतत्त्व को... ऐसा यह परमात्मतत्त्व। आहाहा! **मैं...** पृथक् करते हैं। सब एक-ऐसा नहीं। सब आत्मा एक हैं, ऐसा नहीं परन्तु **मैं...** मेरा अस्तित्व सबके अस्तित्व से भिन्न है, इसलिए **मैं निर्वाणरूपी स्त्री से उत्पन्न होनेवाले...** निर्वाण अर्थात् मोक्षरूपी परिणति से **उत्पन्न होनेवाले अनंग सुख...** अंगरहित सुख, आत्मा का सुख। अनंग सुख अर्थात् आत्मा का सुख। **अनंग सुख के लिए नित्य संभाता हूँ...** आहाहा! पूर्णानन्द को प्रगट करने के लिये, पूर्ण आनन्द के अनुभव के लिये मैं नित्य संभाता हूँ। सम्यक् प्रकार से उसे ही मैं भाता हूँ। आहाहा! ऐसा निश्चय लोगों को कठिन लगता है। निश्चय... निश्चय... निश्चय... बस। व्यवहार, जिसमें पर्याय भी नहीं। आहाहा!

द्रव्य जो है, वह तो सकल निरावरण अखण्ड एक स्वरूप है। उसे मैं यहाँ भाता हूँ, ऐसा कहते हैं। **इस परमात्मतत्त्व को मैं निर्वाणरूपी स्त्री से उत्पन्न होनेवाले अनंग सुख...** आहाहा! निर्वाणरूपी परिणति से उत्पन्न होनेवाला आनन्द, उसके लिये मैं सम्यक् प्रकार से भाता हूँ। यह आलोचना। आहाहा! जिसमें विकल्प का भी अवकाश नहीं। निर्विकल्परूप से आत्मा को देखना, निर्विकल्परूप से आत्मा की भावना में रहना, यह निर्वाणरूपी स्त्री के सुख को उत्पन्न करने का भाव है। आहाहा!

संभाता हूँ... उसके साथ मैं **नमन करता हूँ।** उसे ही मैं नमन करता हूँ। मेरा झुकाव ही, परिणमन ही परिणमता हूँ, मेरे शुद्धस्वरूप में ही मैं परिणमता हूँ, यही आलोचना है। आहाहा! यह निश्चय बात जरा लोगों को कठिन पड़ती है, इसलिए एकान्त-एकान्त करके निकाल डालते हैं। यही अनेकान्त है। स्वसन्मुख का सम्यक् एकान्त (जो)

निश्चयनय का विषय है, वह सम्यक् एकान्त ही है। सम्यक् एकान्त में जो अनुभवना (होता है) और पर्याय प्रगट होती है, उसे देखना, उसका नाम अनेकान्त प्रमाण है। सम्यक् एकान्त के आश्रय से जो दशा प्रगट हो, उसके देखना, उसे प्रमाण कहा जाता है। आहाहा! **नमन करता हूँ।** उसकी सम्यक् प्रकार से भावना भाता हूँ। और उसे ही मैं नमता हूँ, नमन करता हूँ। उसे ही मैं प्रणाम करता हूँ। आहाहा! देव-शास्त्र-गुरु को नमन करता हूँ, यह तो विकल्प है। यह तो नित्यानन्द प्रभु, विकल्प के स्पर्शरहित त्रिकाली ज्ञायकभाव की भावना भाता हूँ और उसे ही मैं नमन करता हूँ। इसका नाम आलोचना कहो या धर्म कहो या मुक्ति का मार्ग कहो। आहाहा! यह १५८ (श्लोक पूरा हुआ)। उस दिन थोड़ा चला था, थोड़ा बाकी था।

श्लोक-१५९

(वसंततिलका)

त्यक्त्वा विभावमखिलं निजभावभिन्नं,
चिन्मात्रमेक-ममलं परिभावयामि।
सन्सार-सागर-समुत्तरणाय नित्यं,
निर्मुक्तिमार्गमपि नौम्यविभेदमुक्तम्।।१५९।।

(वीरछन्द)

निज से भिन्न विभाव त्याग चिन्मात्र भाव को भाता हूँ।
भवदधि तरने हेतु अभेदरूप शिवपथ को नमन करूँ॥१५९॥

[श्लोकार्थः] निज भाव से भिन्न ऐसे सकल विभाव को छोड़कर एक निर्मल चिन्मात्र को मैं भाता हूँ। संसारसागर को तर जाने के लिये, अभेद कहु हुए (-जिसे जिनेन्द्रों ने भेदरहित कहा है ऐसे) मुक्ति के मार्ग को भी मैं नित्य नमन करता हूँ॥१५९॥

श्लोक -१५९ पर प्रवचन

१५९ (श्लोक)।

त्यक्त्वा विभावमखिलं निजभावभिन्नं,
चिन्मात्रमेक-ममलं परिभावयामि।
सन्सार-सागर-समुत्तरणाय नित्यं,
निर्मुक्तिमार्गमपि नौम्यविभेदमुक्तम् ।।१५९।।

[श्लोकार्थः] निज भाव से भिन्न ऐसे सकल विभाव को छोड़कर... आहाहा! यह पंचम काल के साधु पंचम काल के शिष्य को कहते हैं। कोई ऐसा कहे कि ऐसी बात चौथे काल की है। कहनेवाले तो पंचम काल के साधु हैं और सुनाते हैं पंचम काल के जीव को। उसे काल-बाल लागू नहीं पड़ता। आहाहा! कि ऐसी बड़ी बात ऐसे पंचम काल में कैसे कही जाए? यहाँ तो कहते हैं, प्रत्येक गाथा में हम यह बात करते हैं। आहाहा!

नित्य वस्तु निरावरण अन्दर पड़ी है। उसकी महासत्ता अनन्त-अनन्त सुख का सागर है, ऐसा जो भगवान आत्मा, उसके भाव से भिन्न **ऐसे सकल विभाव को छोड़कर...** आहाहा! भगवान तो ऐसा कहते हैं कि हमारी भक्ति के भाव को भी छोड़कर। आहाहा! सकल विभाव को छोड़कर कहा न? तीर्थंकरदेव और सर्वज्ञदेव परमात्मा की ओर का जो भाव और परिणमन, नमस्कार, उस भाव से भी वस्तु भिन्न है। आहाहा! देशनालब्धि आती है न? देशनालब्धि बिना तो होगा नहीं, ऐसा आता है। यह तो एक (बात) बतलायी है। देशनालब्धि होती है परन्तु देशनालब्धि के लक्ष्य से जो ज्ञान हुआ, उससे सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं होता। समझ में आया? यह भी अभी परलक्ष्यी ज्ञान है। देशनालब्धि होती है, तथापि वह भी परलक्ष्यी है। यहाँ तो पर से अत्यन्त भिन्न। है न?

सकल विभाव को छोड़कर एक निर्मल चिन्मात्र को मैं भाता हूँ। ज्ञान की तो प्रधानता वर्णन की है, बाकी पूरा आत्मा, ज्ञान अर्थात् पूरा आत्मा। अनन्त गुण की राशि- ऐसा जो आत्मा, उसे यहाँ ज्ञान कहकर उसे भाता हूँ, ऐसा कहते हैं। ऐसे चिन्मात्र को... भाषा तो चिन्मात्र ली है। ज्ञानमात्र। परन्तु मात्र क्यों लिया? कि दूसरे रागादि की जिसे

अपेक्षा नहीं। चिन्मात्र-अकेला ज्ञायकस्वभाव। आहाहा! उसे मैं भाता हूँ। उसकी भावना में मैं हूँ।

संसारसागर को तर जाने के लिये,... आहाहा! देह छूटकर आत्मा तो रहेगा। देह का नाश होगा परन्तु आत्मा तो अनादि-अनन्त है। तो कहते हैं कि मैं संसारसागर - यह अवतार जो है, उसे तर जाने के लिये है। आहाहा! मुझमें अवतार और अवतार का बीज ही नहीं है। अवतार के कारण का और अवतार का दोनों का मुझमें अभाव है। आहाहा! ऐसे **संसारसागर को तर जाने के लिये,...** इस ओर भाता हूँ तथा इस ओर संसारसागर तर जाने के लिये, यह अपेक्षा से कथन किया है। पर्याय में संसार है, इतना जरा बतलाया है। परन्तु उससे तरने के लिये, संसारसागर से तरने के लिये **अभेद कहे हुए...** भगवान ने जो मोक्ष का मार्ग अभेद कहा है। वस्तु तो अभेद की दृष्टि से ली है परन्तु अब यहाँ अभेद मोक्षमार्ग कहा। जिस मोक्षमार्ग में भेद नहीं। व्यवहार का विकल्प भी जिसमें नहीं।

ऐसा जो **अभेद कहे हुए (-जिसे जिनेन्द्रों ने भेदरहित कहा है ऐसे) मुक्ति के मार्ग...** यहाँ अभेद (अर्थात्) दृष्टि के विषय की बात नहीं है। यहाँ अभेद मोक्षमार्ग की बात है। पर्याय में भेद नहीं। अकेला अभेदस्वरूप अभेद का ध्यान, अभेद के मार्ग से अभेद का ध्यान। आहाहा! उसे देखने का यह है। अभेद दृष्टि से अभेद को देखना, यह निश्चय-सत्य आलोचना है। आहाहा! परन्तु उसमें करना क्या? यह करना कुछ नहीं आता। विकल्प करना, यह करना या यह करना। करने का तो आता नहीं। वहाँ से छूटकर स्थिर होने की बात है। आहाहा!

प्रभु ने अभेद कहा हुआ है, मुक्ति का मार्ग अभेद कहा है। वस्तु तो अभेद है, परन्तु वह मोक्ष का मार्ग है, वह अभेद है। भेद-व्यवहार नहीं। व्यवहारमोक्षमार्ग, वह मोक्षमार्ग नहीं है। **अभेद कहे हुए (-जिसे जिनेन्द्रों ने भेदरहित कहा है ऐसे) मुक्ति के मार्ग को भी...** यह क्या कहा? उसे 'भी' किसलिए लिया?—कि **निर्मल चिन्मात्र को मैं भाता हूँ।** और **मुक्ति के मार्ग को भी मैं नित्य नमन करता हूँ।** इसलिए 'भी' लिया है। आहाहा! समझ में आया? **एक निर्मल चिन्मात्र को मैं भाता हूँ।** और **अभेद कहे हुए मुक्ति के मार्ग को भी...** वह भी है और यह भी है, ऐसा। आहाहा!

मुमुक्षु : द्रव्य को भी नमन करता हूँ और पर्याय को भी नमन करता हूँ।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पर्याय भी अभेद। अभेद पर्याय से अभेद को देखते हुए उसे भाता हूँ। अभेद को भाता हूँ, ऐसे इस अभेद मोक्षमार्ग को भी भाता हूँ अर्थात् इससे ही अभेद दृष्टि होती है। भाता हूँ का अर्थ यह है। अभेद से अभेद की दृष्टि होती है। अभेद मोक्षमार्ग से अभेद की दृष्टि होती है। भेद मोक्षमार्ग से अभेद की दृष्टि नहीं होती। आहाहा! कठिन काम है। एक-एक श्लोक... आचार्य स्वयं कहते हैं कि यह मैंने तो मेरे लिये बनाया है। यह टीका तो है भले पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि की, परन्तु श्लोक जो हैं, वे तो आचार्य कहते हैं, मैंने तो मेरी भावना के लिये बनाया है। किसी को समझाने के लिये, समझने के लिये नहीं; मेरी भावना के लिये है। आहाहा! उसमें समझना हो, वह समझ लो।

मुमुक्षु : द्रव्य की भावना भाता है और पर्याय की भावना भाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय उस ओर ढलती है न? इसलिए भावना भाता है, ऐसा। भेद का व्यवहार नहीं है। अभेद की पर्याय व्यवहार है, इसलिए उसे भाता हूँ, ऐसा कहते हैं। द्रव्य की अपेक्षा से वह है तो व्यवहार।

मुमुक्षु : ऐसी भावना भावे, उसे अभेद होवे ही।

पूज्य गुरुदेवश्री : होवे ही वह।

मुमुक्षु : प्रमाण ज्ञान से हो जाए?

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ अभेद दृष्टि त्रिकाल पर है, इसलिए निश्चयनय का विषय है। अभेद में पर्याय होती है, उसे जानने जाए, वहाँ प्रमाण हो जाता है। आहाहा! यह तो अकेली अभेद चीज़ है, मोक्षमार्ग जो भगवान ने कहा और जो अभेद चीज़ भगवान ने कही, उसे भाता हूँ और अभेद मोक्षमार्ग को ही भाता हूँ। दो बात ले ली। आहाहा!

मुमुक्षु : एक समय में दोनों?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक समय में दो इकट्ठे हैं। अभेद की दृष्टि ही अभेद के ऊपर है, इसलिए अभेद की भावना हुई - यह अभेद वस्तु की भावना हुई और अभेद मोक्षमार्ग की भावना हुई। दोनों एक साथ इकट्ठी हुई। भेद नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : इसमें गुरुदेव! २१वाँ बोल इसके साथ आ जाए तो अच्छा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो आया था। २१ बोल की व्याख्या अपने नहीं दी?

मुमुक्षु : कल रात्रि में आपने कहा, तब लालूभाई नहीं थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहिनश्री के (वचनामृत के) २१वें बोल में आता है। वहीं किसी का पृष्ठ पड़ा है। किसी ने चिह्न रखा है। आहाहा!

चैतन्य को चैतन्य में से परिणमित... चैतन्यस्वरूप जो त्रिकाली भगवान, उसके **चैतन्य में से परिणमित भावना...** अर्थात् अभेद मोक्षमार्ग जो यहाँ कहा वह। **अर्थात् राग-द्वेष में से नहीं उदित हुई भावना — ऐसी यथार्थ भावना हो तो वह भावना फलती ही है।** आहाहा! वह **यदि नहीं फले तो जगत को — चौदह ब्रह्माण्ड को शून्य होना पड़े...** अर्थात् क्या कहा? आहाहा! शुद्ध चैतन्य की भावना-परिणति, उसका फल पूर्ण स्वरूप न आवे, द्रव्य पूर्णरूप न परिणमे तो द्रव्य शून्य हो जाए। आहाहा! एक द्रव्य शून्य होने पर, प्रत्येक परिणति का फल शून्य होने पर जगत शून्य हो जाए। आहाहा! समझ में आया? वहाँ तो अफ्रीका में बात की थी। शुरुआत में पहली। लोग सुनते थे। अन्तिम आठ दिन पश्चात् थोड़ा... पहले अठारह दिन लोग ठीक रहे।

क्या कहते हैं? कि राग-द्वेषरहित चैतन्य की भावना... आहाहा! वह **फलती ही है।** वह भावना होकर सिद्धपद होता ही है। न हो, **यदि नहीं फले तो जगत को — चौदह ब्रह्माण्ड को शून्य होना पड़े...** यह परिणाम जो चैतन्य के, मोक्षमार्ग के उसका मोक्ष जो द्रव्य है, मोक्ष ऐसी जो जीव की पर्याय है, वह द्रव्य की पर्याय है, वह चैतन्य के परिणमन से वह पर्याय यदि न आवे तो उस द्रव्य को शून्य होना पड़े अर्थात् द्रव्यमय परिणमन है, उसका परिणाम आता ही है। आवे तो चैतन्यद्रव्य टिका रहे। इसी प्रकार चार गति के जो परिणाम राग-द्वेषवाले हैं, उनका परिणाम भी गति न आवे तो वह गति शून्य हो जाए। ऐसा होकर पाँचों ही गति शून्य हो जाए, पाँचों ही गति शून्य होने पर जगत शून्य हो जाए। जगत शून्य होने पर द्रव्य शून्य हो जाए-शून्य हो जाए। आहाहा! समझ में आया?

राग-द्वेषरहित चैतन्य की भावना की जो परिणति उसका फल सिद्ध पद, पूर्ण पद वह फलता ही है। नहीं फले, उस परिणाम का फल न आवे तो सिद्धगति ही न रहे, मोक्षगति ही न रहे। मोक्षगति न रहे तो द्रव्य की पर्याय न रहे तो द्रव्य ही न रहे। आहाहा! जगत को शून्य होना पड़े। आहाहा! समझ में आया? बात तो चैतन्य के परिणमन की की है। परन्तु उसमें पूरा जगत शून्य हो जाता है, ऐसा कहा उसका अर्थ कि जो-जो परिणाम

है, उसका फल पर्याय में नहीं आवे तो वह द्रव्य नहीं रहे। द्रव्य न रहे तो जगत शून्य हो जाए। अनन्त द्रव्य का परिणमन है, उस परिणमन का परिणाम-फल पूर्ण है, वह न आवे अशुद्धता का फल गति, शुद्धता का फल सिद्धगति, वह न आवे तो चारों गति और सिद्ध गति का भी नाश हो जाए। आहाहा! समझ में आया इसमें?

यदि नहीं फले तो जगत को — चौदह ब्रह्माण्ड को शून्य होना पड़े अथवा तो इस द्रव्य का नाश हो जाए। उस पर्याय का फल न आवे तो द्रव्य ही न रहे। आहाहा! चैतन्य के परिणमन का फल, चैतन्य की मुक्ति की पर्याय न आवे, गति न आवे, पूर्ण गति न हो तो उस द्रव्य का नाश हो जाए। समझ में आया? जरा सूक्ष्म है।

मुमुक्षु : पर्याय न परिणमे, उसमें द्रव्य का नाश किसलिए होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय का फल है गति पूर्ण है। पर्याय का फल है... यहाँ तो चेतन का लेना है। उसका फल है, वह पूर्ण गति है और उसका फल पूर्ण न आवे तो वह पर्यायरहित द्रव्य हो जाए। पर्यायरहित द्रव्य हो जाए तो द्रव्य का नाश हो जाए। एक द्रव्य का नाश होने पर सर्व द्रव्य का नाश हो जाए। सर्व द्रव्य का नाश होने पर जगत शून्य हो जाए। लालचन्दभाई! आहाहा!

यह बात तो वहाँ अफ्रीका में विस्तार से हुई थी। वहाँ सुननेवाले हैं। तीस वर्ष से वहाँ का चलता है न? क्या कहलाता है? यह टेपरिकार्डिंग चलता है, व्याख्यान चलता है। झवेरचन्दभाई हैं, एक बेलजीभाई हैं। बेलजीभाई वहाँ रह गये हैं नहीं? बहुत पढ़नेवाले। साधारण नौकर हैं। यह झवेरचन्दभाई और ये सब पैसेवाले लाखोंपति बहुत बड़े यह है परन्तु फिर भी वह व्यक्ति बहुत सन्तोषी है। बहुत मधुर वांचन देता है। यहाँ की शैली की बात बहुत मीठी देता है। सुननेवाले धर्मशीभाई के यहाँ हम उतरे थे, वह तो बहुत प्रसन्न होता था। बेलजीभाई पढ़ते हैं तो ऐसा आनन्द आता है। जवान व्यक्ति हैं। यहाँ आये थे। आहाहा!

यहाँ तो बात चैतन्य के परिणमन से परिणाम उसका पूर्ण स्वरूप न हो तो यह गति ही न रहे। गति न रहे तो यह द्रव्य ही नाश हो जाए। द्रव्य का परिपूर्ण स्वरूप है, वह पर्याय हुई। वह सिद्धगति हुई, तो उस चैतन्य के परिणाम का वह पूर्ण स्वरूप न हो तो वह द्रव्य

ही न रहे, द्रव्य न रहे तो एक द्रव्य न रहे तो दूसरे द्रव्य भी उसके परिणाम के फलरूप उसकी गति न हो तो वह द्रव्य भी नाश हो जाए। द्रव्य नाश होने पर जगत की शून्यता हो जाए। आहाहा! कहो, देवीलालजी! आहाहा!

अथवा तो इस द्रव्य का नाश हो जाए। पर्याय की पूर्णता न रहे; यहाँ साधन हुआ और साध्य न हो तो साधन का करनेवाला द्रव्य का भी नाश हो जाए। आहाहा! **परन्तु ऐसा होता ही नहीं। चैतन्य के परिणाम के साथ...** अर्थात् साधक के परिणाम के साथ **कुदरत बँधी हुई है...** चैतन्य के परिणाम हुए हैं, उसे मुक्ति होगी ही। वह होती ही है। उसमें कुदरत उसके साथ बँधी हुई है। यह द्रव्य का स्वभाव ही ऐसा है। समझ में आया? चैतन्य के परिणाम जो निर्मल हैं, उनका निर्मलपना पूर्ण न आवे... आहाहा! ऐसा होता ही नहीं। परिणाम हों, वह सिद्ध होता ही है। ऐसी **कुदरत बँधी हुई है...** कुदरत अर्थात्? द्रव्य का स्वभाव ही इस प्रकार बँधा हुआ है। आहाहा!

मुमुक्षु : कुदरत अर्थात् बाह्य द्रव्य का संयोग नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे की-बाह्य की बात (नहीं है)। कुदरत अर्थात् उस द्रव्य के राग-द्वेषरहित परिणाम हुए और पूर्णता न हो, यह तो वस्तु का स्वरूप रहे नहीं, वस्तु का स्वरूप ही रहे नहीं। आहाहा! अभेद मोक्षमार्ग हो और मोक्ष न हो तो वह द्रव्य ही नहीं रहे। वह परिपूर्ण गति, गति ही न रहे। गति के न रहने पर द्रव्य न रहे; द्रव्य न रहने पर द्रव्य का नाश हो जाए। समझ में आया? आहाहा! वहाँ तो बेचारे सब सुनते थे। वहाँ तो बहुत वर्ष से वाँचन है न? २५-३० वर्ष से वाँचन है।

चैतन्य के परिणाम के साथ कुदरत बँधी हुई है... अर्थात्? निर्मल परिणाम के साथ सिद्धपद होता ही है, ऐसा द्रव्य का स्वभाव ही है। आहाहा! साधक परिणाम निर्मल हुए और साध्य न हो, (ऐसा) तीन काल में नहीं होता। आहाहा! ये साधक परिणाम हुए और उसे सिद्धपद न हो, उसे संसार / भव रहे - ऐसा तीन काल में नहीं होता। संसार / भव रहता ही नहीं। सिद्धगति ही होती है। सिद्धगति न हो तो परिणाम का फल नहीं आया। परिणाम का फल नहीं आया तो परिणाम ही निरर्थक गये। परिणाम निरर्थक गये तो परिणाम का धारक आत्मा, उसका भी नाश हुआ। आहाहा! ऐसा है। उस दिन पहले ऐसा अर्थ नहीं

हुआ था, यह वाँचन हो गया तब। यह तो आवे तब आवे न! कहीं धार रखा है? वहाँ एकदम अन्दर से आया। क्या कहते हैं यह?

साधक परिणाम, चैतन्य के परिणाम हुए और परिणाम का फल मुक्तदशा, यह द्रव्य की दशा परिपूर्ण न हो तो उस द्रव्य का नाश हो जाए, द्रव्य ही रहे नहीं। एक द्रव्य न रहे, दूसरे द्रव्य के भी जो परिणाम हैं, उनका फल भी न आवे तो वह भी फल बिना की, गति बिना का और उसके कारण बिना का द्रव्य हो जाए; इसलिए द्रव्य का भी नाश हो जाएगा। पाँचों ही गतियों का नाश हो जाएगा। पाँचों गतियों का नाश होने पर पाँचों ही गतियों का कारण जो द्रव्य, उसका नाश हो जाएगा। द्रव्य नहीं रहेगा। आहाहा! है?

ऐसा ही वस्तु का स्वभाव है। ऐसा ही वस्तु का स्वभाव है। आहाहा! **यह अनन्त तीर्थङ्करों की कही हुई बात है।** आहाहा! समझ में आया? अनन्त तीर्थंकरों ने कही हुई यह बात है। जिसके परिणाम राग-द्वेषरहित हुए, उसके परिणाम का फल सिद्धपद न हो, केवल (ज्ञान) न हो, ऐसा तीन काल में नहीं बनता। ऐसा न होवे तो द्रव्य का स्वभाव परिपूर्ण है, उसका अभाव होगा, परिपूर्ण का अभाव होने पर उसके कारण के परिणाम का अभाव होगा; कारण के परिणाम का अभाव होने पर द्रव्य का भी अभाव हो जाएगा। आहाहा! समझ में आया? जरा सूक्ष्म है।

यह अनन्त तीर्थङ्करों की कही हुई बात है। क्योंकि जो द्रव्य है, उसके जो परिणाम हैं, उन चैतन्य के परिणाम का फल चैतन्य पूर्ण हुए बिना रहेगा ही नहीं। ऐसा ही उसका - द्रव्य का स्वभाव है, ऐसा अनन्त तीर्थंकरों ने कहा हुआ है। इस प्रकार परिणाम का फल यदि गतिरूप से, पूर्णरूप से एक का न हो तो दूसरे का नहीं होगा, तो दूसरी गतियों के परिणाम का फल गति भी वह नहीं होगी। यदि गति ही नहीं होगी तो गति का धारक द्रव्य भी नहीं रहेगा। अनन्त तीर्थंकरों ने ऐसा कहा है। आहाहा! यह २१वाँ बोल है।

वस्तु नित्यानन्द के परिणाम हों और नित्यानन्दरूपी पर्याय की दशा पूर्ण न हो तो वह द्रव्य ही नहीं रह सकता। आहाहा! परिणाम के फलवाला द्रव्य ही नहीं रह सकता। फल न आवे और अकेले परिणाम रहे (तो) उस परिणाम का करनेवाला द्रव्य भी रहा नहीं। आहाहा! थोड़ी सूक्ष्म बात है। यह बहिन के वचन हैं। यह वस्तु का स्वरूप है। वस्तुस्वरूप से निकली हुई यह बात है।

मुमुक्षु : पहले इसका अर्थ क्या करते थे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : बस, ऐसा कि नाश होगा, इतनी साधारण बात। इसका बहुत विस्तार नहीं था। नाश होगा तो क्या होगा ? और अनन्त तीर्थंकरों ने कहा कि यह नाश होगा तो जगत शून्य होगा, इतनी सब विस्तार से बात नहीं थी। समझ में आया ? आहाहा !

राग-द्वेषरहित परिणाम हों और उन परिणाम की पूर्णता ऐसी सिद्धगति न हो तो सिद्धगति न रहे। गति न रहे तो गति के कारण के परिणाम शून्य हो जाए और उन परिणाम का धारक द्रव्य भी नहीं रहे। इस प्रकार तीनों काल के द्रव्य के शून्यपने का प्रसंग आवे। आहाहा ! समझ में आया ?

अस्तित्व तत्त्व है, परिपूर्ण भरपूर निरावरण है। उसके आश्रय से हुए परिणाम, उनकी परिपूर्णता न हो तो उस परिणाम की भी शून्यता हो जाए, परिणाम का भी अभाव हो जाए। परिणाम का अभाव होने पर, जिसके आश्रय से परिणाम हुए, उस द्रव्य का अभाव हो जाए। आहाहा ! जरा सूक्ष्म है। वहाँ अफ्रीका में चला था। उस समय तो बहुत लोग थे। फिर बाद के आठ दिन थोड़े लोग थे। पहले अठारह दिन। बाद से फिर दुकान में धन्धे के कारण लड़के नहीं आ सकते थे। बड़े-बड़े आदमी आवे। आठ दिन में से एक दिन तो मौम्बासा गये थे न। वापस आठ दिन में से एक दिन ऐसा वह... क्या दूसरा गाँव ? 'टीकाबा'। मोहनलाल थे वहाँ गये। वहाँ भी लोग बहुत आते थे। मौम्बासा में भाई को ऐसा था कि मैं अकेला हूँ, क्या करूँगा ? कैसे होगा ? कहा, कुछ ज्यादा लोगों की अपने को आवश्यकता नहीं है। रोने लगे। वहाँ नैरोबी में। रोने लगे कि यहाँ महाराज आये और मेरा गाँव यहाँ तीन सौ मील दूर। यहाँ (भारत) से तीन हजार मील दूर। वहाँ से तीन सौ मील दूर। वहाँ आवे नहीं। मैं वहाँ कायम रहनेवाला। आहाहा ! रोने लगे। उलझो नहीं, अपने लोगों की आवश्यकता नहीं है। जो कोई पाँच-पच्चीस लोग बैठे होंगे, उसमें अपन पढ़ेंगे, कहेंगे। वहाँ तो खचाखच लोग भर गये। इतना बड़ा हॉल। पैसे भी बहुत खर्च किये। इकतालीस हजार रुपये खर्च किये। एक दिन इतने में इकतालीस हजार रुपये दिये। आहाहा !

इस परिणाम का परिणामी फल पूर्ण न आवे तो वह द्रव्य ही न रहे। द्रव्य का स्वभाव ही ऐसा है कि द्रव्य के परिणाम हुए, उसे पूर्ण परिणति होती ही है। दूज उगी, पूर्णिमा हुए बिना नहीं रहेगी। नहीं तो वह दूज उगी ही नहीं और दूज का चन्द्रमा भी नहीं है। आहाहा !

पूर्णिमा न हो तो वह दूज ही नहीं है। दूज नहीं तो चन्द्र नहीं, चन्द्र नहीं तो उसका परिणाम पूर्ण आया नहीं। आहाहा! हिम्मतभाई! आहाहा! जिसकी सत्ता पूर्ण पड़ी है... आहाहा! उसके भाव के परिणाम प्रगट हुए और उसकी पर्याय में पूर्णता न हो, जगत शून्य हो जाए। ऐसा तीन काल में नहीं बनता। आहाहा! **यह अनन्त तीर्थंकरों की कही हुई बात है।** क्योंकि वस्तु का स्वरूप ही यह है। यह अनन्त तीर्थंकरों ने कहा हुआ है। किसी ने इसमें पृष्ठ रखा था। लो, यह बात हुई न? लालचन्दभाई ने सुनी नहीं थी, इसलिए फिर से कहलवायी। आहाहा!

द्रव्य, साधकपरिणाम और साध्यपरिणाम तीन का सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध में कहीं टूट पड़े तो द्रव्य का नाश हो जाए। समझ में आया? आहाहा! द्रव्य, वस्तु वह त्रिकाली सत्ता का सत्त्व है और उसके परिणाम वर्तमान पर्याय के सत्त्व का सत्त्व है। अपने तो १४वीं गाथा में ऐसा आया नहीं था?—कि अशुद्धपना, वह भी जीव का सत्त्व है। अशुद्धपना है ही नहीं, ऐसा कोई कहे, तब तो वह द्रव्य ही स्वयं नहीं रहता। अशुद्धपने का अंश है, उससे द्रव्य पूरा होता है। अनन्त गुणों का पिण्ड, वह द्रव्य होता है। अशुद्धपने का अंश तो अनादि-सान्त है, उसे न माने तो द्रव्य ही नहीं रहेगा। वह अशुद्धपना भी द्रव्य का सत्त्व है। वस्तु की पर्याय भी आंशिक सत्त्व है परन्तु आश्रय करनेयोग्य नहीं है। आश्रय करनेयोग्य नहीं, इसलिए सत्त्व नहीं है - ऐसा नहीं है।

दूसरे ऐसा ही कहते हैं न कि एक ही आत्मा सर्व व्यापक है। मलिनता-फलिनता आत्मा में है ही नहीं। पर्याय में मलिनता नहीं है—ऐसा माने, वह वस्तु को, द्रव्य को मानता नहीं है क्योंकि मलिनता के अंश और निर्मलता के अंश यह अनादि-अनन्त पर्याय का पिण्ड वह गुण है और ऐसे अनन्त गुण वह द्रव्य है तो वह जो अनादि-सान्त अशुद्धता न माने, उसने गुण ही माना नहीं और गुण माना नहीं, इसलिए अनन्त गुण का पिण्ड द्रव्य भी जाना नहीं। समझ में आया? आहाहा! ऐसा है।

यहाँ भी यह कहते हैं, देखो! **चिन्मात्र को मैं भाता हूँ। संसारसागर को तर जाने के लिये, अभेद कहे हुए...** भगवान ने मोक्ष का मार्ग जो अभेद कहा, उस **मुक्ति के मार्ग को भी मैं नित्य नमन करता हूँ।** उसे मैं प्रणाम करता हूँ, क्योंकि उससे मुझे मुक्ति होनेवाली है। अभेद मोक्ष के मार्ग से मुक्ति की पर्याय अस्तित्वरूप से (होनेवाली है)। इस अस्तित्व

से वह अस्तित्व होनेवाला है। मोक्ष के मार्ग की अपूर्ण शुद्धता से पूर्ण शुद्धता होनेवाली है। यह वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। उसमें से कुछ भी कम, अधिक, विपरीत फेरफार करे तो द्रव्य का नाश हो जाएगा। अर्थात् उसकी सत्ता में, श्रद्धा में सत्य नहीं रहेगा। सत्य जैसा है, जितना है, जितना है वैसा उसकी श्रद्धा में नहीं रहेगा... उसे तो द्रव्य, द्रव्य के परिणाम और उसका फल दृष्टि में आया ही नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : अपूर्णता से पूर्णता हो, यह क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : होती ही है। दूज उगे, उसकी पूर्णिमा होती ही है। दूज उगे और पूर्णिमा न हो तो वह चन्द्रमा रह नहीं सकता। भले अपूर्ण है और उससे पूर्ण हुआ, परन्तु फल उसका उसकी जाति का है। अभेद मोक्षमार्ग, वह पूर्ण मोक्ष की पर्याय की जाति का मार्ग है। वह कुजाति नहीं है। आहाहा! यह प्रगट दशा हुई और मोक्ष न हो... आहाहा! तत्त्व नहीं रहेगा। पर्याय की साधकदशा प्रगट हुई, कुदरत बँधी हुई है कि वहाँ साध्य सिद्धपद होगा ही। न हो (तो) द्रव्य का नाश हो जाएगा। अनन्त तीर्थंकरों ने ऐसा कहा है। समझ में आया? अरे! ऐसी बातें हैं।

यहाँ यह कहा, **चिन्मात्र को मैं भाता हूँ।** भाता हूँ, यह तो पर्याय है। **संसारसागर को तर जाने के लिये,...** इस अशुद्धता के अभाव के लिये **अभेद कहे हुए (-जिसे जिनेन्द्रों ने भेदरहित कहा है ऐसे)...** आहाहा! ऐसे **मुक्ति के मार्ग को भी...** भी अर्थात्? **निज भाव से भिन्न ऐसे सकल विभाव को छोड़कर एक निर्मल चिन्मात्र को मैं भाता हूँ।** तथा मुक्तिमार्ग को भी मैं नित्य भाता हूँ। भी शब्द लिया है। भाता हूँ अर्थात् मुझमें होता है। मोक्ष का मार्ग होता ही है। आहाहा!

यह सन्तों की वाणी है। दिगम्बर सन्तों की यह वाणी है। अप्रतिबुद्ध को कहते हैं। (समयसार) ३८ गाथा में ऐसा आया है न? अप्रतिबुद्ध शिष्य को कहते हैं कि पंचम काल के सन्त, पंचम काल के अप्रतिबुद्ध जीव को कहते हैं और वह पंचम काल का अप्रतिबुद्ध जीव दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त करता है। परिपूर्ण करता है। वहाँ ३८ गाथा में आया है और वह... आहाहा! बदले नहीं वह बात। प्रगट दशा हुई, वह गिरेगी नहीं—ऐसा अप्रतिबुद्ध श्रोता, गुरु के पास सुनकर उसकी अपनी योग्यता से दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट किये, उस पंचम काल के प्राणी की पर्याय भी गिरनेवाली नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

अप्रतिहत भाव का पुकार किया है। अप्रतिहत भाव का ढिंढ़ोरा पीटा है। गिरूँगा... गिरूँगा... द्रव्य का नाश होवे तो गिरूँगा शंका तुझे होगी। आहाहा! गिरने की यहाँ बात नहीं है, चढ़ने की बात है। आहाहा! छूटने से-पूर्ण होने से ही (छुटकारा है)। क्षयोपशम है, उसका क्षायिक होगा ही और वह केवलज्ञान लेगा ही। पंचम काल का क्षयोपशम ज्ञान, क्षयोपशम समकित, क्षायिक समकित का कारण है। क्षायिक होकर ही रहेगा और उसमें से केवलज्ञान होगा ही। आहाहा!

मुमुक्षु : नहीं तो ब्रह्माण्ड का नाश हो जाएगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। नहीं तो वस्तु नहीं रहेगी। परिणाम और परिणाम का फल, दोनों नहीं रहे तो परिणाम और परिणाम के फल का धारक तो रहे नहीं। आहाहा! यह तो बहिन की भाषा आयी है। कहो, समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : पूज्य बहिनश्री को इतना अधिक कहना है इस बोल में?

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर में भाव में है। वह कहीं रटना नहीं पड़ता। भाव ऐसा ही आया है और ऐसा ही है। कहीं रटकर, याद करके वहाँ कहना नहीं पड़ता। आहाहा!

मुक्ति के मार्ग को भी मैं नित्य नमन करता हूँ। यह १०९ गाथा (पूरी) हुई।

गाथा-११०

कम्ममहीरुहमूलच्छेदसमत्थो सकीयपरिणामो।
साहीणो सम-भावो आलुंछण-मिदि समुद्दिट्ठं।।११०।।

कर्ममहीरुह-मूलच्छेदसमर्थः स्वकीय-परिणामः।
स्वाधीनः समभावः आलुञ्छन-मिति समुद्दिष्टम्।।११०।।

परमभावस्वरूपाख्यानमेतत्। भव्यस्य पारिणामिकभावस्वभावेन परमस्वभावः औदयिकादिचतुर्णां विभावस्वभावानामगोचरः स पञ्चमभावः। अत एवोदयोदीरणक्षय-क्षयोपशमविविधविकारविवर्जितः। अतः कारणादस्यैकस्य परमत्वं इतरेषां चतुर्णां विभावानामपरमत्वम्।

निखिलकर्मविषवृक्षमूलनिर्मूलनसमर्थः त्रिकालनिरावरणनिजकारणपरमात्मस्वरूप-श्रद्धानप्रतिपक्षतीव्रमिथ्यात्वकर्मोदयबलेन कुदृष्टेरयं परमभावः सदा निश्चयतो विद्यमानोऽप्य-विद्यमान एव।

नित्यनिगोदक्षेत्रज्ञानामपि शुद्धनिश्चयनयेन स परमभावः अभव्यत्वपारिणामिक इत्यनेनाभिधानेन न सम्भवति। यथा मेरोरधोभागस्थितसुवर्णराशेरपि सुवर्णत्वं, अभव्यानामपि तथा परमस्वभावत्वं; वस्तुनिष्ठं, न व्यवहारयोग्यम्।

सुदृशामत्यासन्नभव्यजीवानां सफलीभूतोऽयं परमभावः सदा निरञ्जनत्वात्; यतः सकल-कर्मविषमविषद्रुमपृथुमूलनिर्मूलनसमर्थत्वात् निश्चयपरमालोचनाविकल्पसम्भवालुञ्छनाभि-धानं अनेन परमपञ्चमभावेन अत्यासन्नभव्यजीवस्य सिध्यतीति।

जो कर्म-तरु-जड़ नाश के सामर्थ्यरूप स्वभाव है।
स्वाधीन निज समभाव आलुंछन वही परिणाम है॥११०॥

अन्वयार्थ : [कर्ममहीरुहमूलछेदसमर्थः] कर्मरूपी वृक्ष का मूल छेदने में समर्थ ऐसा जो [समभावः] समभावरूप [स्वाधीनः] स्वाधीन [स्वकीयपरिणामः] निज परिणाम [आलुंछनम् इति समुद्दिष्टम्] उसे आलुंछन कहा है।

टीका : यह, परमभाव के स्वरूप का कथन है।

भव्य को पारिणामिकभावरूप स्वभाव होने के कारण परमस्वभाव है। वह पंचम भाव औदयिकादि चार विभावस्वभावों को अगोचर है। इसीलिए वह पंचम भाव उदय, उदीरणा, क्षय, क्षयोपशम ऐसे विविध विकारों से रहित है। इस कारण से इस एक को परमपना है, शेष चार विभावों को अपरमपना है। समस्त कर्मरूपी विषवृक्ष के मूल को उखाड़ देने में समर्थ ऐसा यह परमभाव, त्रिकाल निरावरण निज कारणपरमात्मा के स्वरूप की श्रद्धा से प्रतिपक्ष तीव्र मिथ्यात्वकर्म के उदय के कारण कुदृष्टि को, सदा निश्चय से विद्यमान होने पर भी, अविद्यमान ही है (कारण कि मिथ्यादृष्टि को उस परमभाव के विद्यमानपने की श्रद्धा नहीं है)।

नित्यनिगोद के जीवों को भी शुद्धनिश्चयनय से वह परमभाव 'अभव्यत्व-पारिणामिक' ऐसे नाम सहित नहीं है (परन्तु शुद्धरूप से ही है)। जिस प्रकार मेरु के अधोभाग में स्थित सुवर्णराशि को भी सुवर्णपना है, उसी प्रकार अभव्यों को भी परमस्वभावपना है; वह वस्तुनिष्ठ है, व्यवहारयोग्य नहीं है (अर्थात् जिस प्रकार मेरु के नीचे स्थित सुवर्णराशि का सुवर्णपना सुवर्णराशि में विद्यमान है किन्तु वह उपयोग में नहीं आता, उसी प्रकार अभव्यों का परमस्वभावपना आत्मवस्तु में विद्यमान है किन्तु वह काम में नहीं आता क्योंकि अभव्य जीव परमस्वभाव का आश्रय करने में अयोग्य हैं)। सुदृष्टियों को—अति आसन्न भव्य जीवों को—यह परमभाव सदा निरंजनपने के कारण (अर्थात् सदा निरंजनरूप से प्रतिभासित होने के कारण) सफल हुआ है; जिससे, इस परम पंचमभाव द्वारा अति-आसन्न भव्य जीव को निश्चय-परम-आलोचना के भेदरूप से उत्पन्न होनेवाला 'आलुंछन' नाम सिद्ध होता है, कारण कि वह परमभाव समस्त कर्मरूपी विषम-विषवृक्ष के विशाल मूल को उखाड़ देने में समर्थ है।

गाथा - ११० पर प्रवचन

गाथा ११०। आहाहा! क्या अस्तित्व का पुकार है! तीर्थंकरों का पुकार है। पूर्ण सत्ता का स्वीकार... आहाहा! पूर्ण प्रभु का स्वीकार, वह पूर्ण होगा ही। जैसा अन्दर में है,

वैसा पूर्ण पर्याय में आयेगा ही। नहीं तो द्रव्य नहीं रह सकेगा, जगत नहीं रह सकेगा। सत्ता की असत्ता हो जाएगी। ऐसा कभी तीन काल में नहीं होता। आहाहा! समझ में आया?

११० (गाथा)।

कम्ममहीरुहमूलच्छेदसमत्थो सकीयपरिणामो।
साहीणो सम-भावो आलुंछण-मिदि समुद्दिट्ठं।।११०।।

सकीयपरिणामो शब्द पड़ा है उसे पारिणामिकभाव कहेंगे। अर्थ में पारिणामिकभाव कहेंगे।

जो कर्म-तरु-जड़ नाश के सामर्थ्यरूप स्वभाव है।
स्वाधीन निज समभाव आलुंछन वही परिणाम है॥११०॥

टीका : भव्य को पारिणामिकभावरूप स्वभाव होने के कारण... आहाहा! भव्य को प्रगट हुआ है, इस अपेक्षा से बात है। पारिणामिकभाव तो अभव्य को भी है, परन्तु उसे प्रगट होनेवाला नहीं है, इसलिए है, वह नहीं है। **भव्य को पारिणामिकभावरूप...** पारिणामिकभावरूप, ऐसा शब्द है।....पारिणामिकभाव... आहाहा! ऐसा **स्वभाव होने के कारण परमस्वभाव है।** परम स्व-भाव है। भव्य जीव को पारिणामिकभावस्वरूप स्वभाव होने से परम स्व-भाव अपना स्वयं स्वभाव है। स्व अर्थात् अपना ही वह भाव है। पूर्ण पारिणामिकभाव, वह भाववान, ऐसा आत्मा, उसका ही वह स्वभाव है। स्वभाववान का ही वह स्वभाव है। आहाहा!

भव्य को... अभव्य को भी स्वभाव तो पूर्ण शुद्ध है, पर्याय में प्रगट नहीं होता। आहाहा! **पंचम भाव औदयिकादि चार विभावस्वभावों को अगोचर है।** आहाहा! (पंचम) भाव, द्रव्यस्वभाव, त्रिकाली स्वभाव अस्तित्व, वह **औदयिकादि चार विभावस्वभावों को अगोचर है।** क्षायिकभाव को भी अगोचर कहा। इसका अर्थ कि क्षायिक के आश्रय से (गोचर) नहीं होता, ऐसा कहते हैं। यहाँ तो चारों ही भाव के अगोचर कहा। इसका अर्थ (यह कि) उनके आश्रय से प्रगट नहीं होता। परमपारिणामिकभाव के आश्रय से प्रगट होता है। इसलिए **औदयिकादि चार विभावस्वभावों को अगोचर है।** अगम्य है। अर्थात् कि क्षायिकभाव के आश्रय से अगम्य है। क्षयोपशमभाव के आश्रय से

अगम्य है। क्षयोपशमभाव से ज्ञात होता है, उपशमभाव से ज्ञात होता है, क्षायिकभाव से ज्ञात होता है, तथापि उससे अगोचर है। उनके आश्रय होने पर अगोचर है। क्षायिकभाव का-पर्याय का आश्रय करने जाए तो अगम्य है। आहाहा! समझ में आया? शब्द तो ऐसा है।

औदयिकादि चार विभावस्वभावों को अगोचर है। आत्मा क्षायिकभाव को भी अगम्य है। इसका अर्थ (यह कि) क्षायिकभाव की पर्याय के लक्ष्य से अगम्य है। पर्याय के ऊपर लक्ष्य करने पर वह अगम्य है। द्रव्य के ऊपर लक्ष्य करने पर वह गम्य हो सकता है। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म! फिर बहुत से कहते हैं न? कि एकान्त है, एकान्त है।

क्रमबद्ध की व्याख्या भाई ने अच्छी रखी है। क्रमबद्ध की पुस्तक आयी है न? पुस्तक आयी है। मुझे कुछ खबर नहीं थी, तब से मेरी दिशा पलटी... क्रमबद्ध है, तब से मेरा दिल फिर गया। और उसे सुनकर कितनों को नियतवाद और... पुरुषार्थ की हीनता देखकर... क्रमबद्ध में भी क्रमबद्ध में ही पुरुषार्थ है।... उसका निर्णय द्रव्य के आश्रय से होता है। ज्ञायकभाव के आश्रय से निर्णय (होता है)। इसलिए वह पुरुषार्थ है। पारिणामिक शुद्धभाव है, उसका पुरुषार्थ हुआ, वह तो... होनेवाली थी, काललब्धि भी उस समय में थी, उस समय निमित्त या निमित्त का अभाव जो है, उस समय... एक समय में पाँचों समवाय एक साथ ही होते हैं। समझ में आया? मार्ग ऐसा सूक्ष्म। बाहर की प्रवृत्ति में चढ़ा दिये न, इसलिए अन्तर में दृष्टि करना इसे मुश्किल पड़ जाती है। वस्तु तो...

जहाँ दृष्टि करनी है, ऐसा स्वरूप त्रिकाल विद्यमान है। है, उसकी दृष्टि करनी है। लो, ठीक। नहीं है, उसकी दृष्टि करनी हो तो दृष्टि में विपरीतता आवे। परन्तु है। भगवान है... परन्तु परमात्मा है। आहाहा! ऐसा जो चार भाव... अभाव स्वभाव। क्षायिक को, वह केवलज्ञान और क्षायिकभाव के भी अगम्य है अर्थात् पर्याय के लक्ष्य से (गम्य) नहीं होता। इसलिए चार भाव को अगम्य है। बाकी तो क्षयोपशम, क्षायिक और उपशमभाव के गम्य है। ....किस प्रकार होगा? आहाहा! अगम्य कहा, वह इस अपेक्षा से कहा है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)